चतुर्थ अध्याय

उपासकदशाङ्गसूत्र में वर्णित लोक का स्वरूप

1. अधोलोक
2. मध्यलोक
3. ऊर्ध्वलोक

चतुर्थ अध्याय

उपासकदशाङ्गसूत्र में वर्णित लोक और उसका स्वरूप

उपासकदशांगसूत्र श्रावकाचार का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में लोक के विषय में भी सामग्री उपलब्ध है, अत: लोक के विषय में भी जानना आवश्यक है।

जितने क्षेत्र में धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव इन षड्द्रव्यों का अस्तित्व पाया जाता है, वह क्षेत्र लोक इस संज्ञा से ख्यात है।[1] भगवतीसूत्र में जहाँ पंजास्तिकायों का सहावस्थान होता है, उसे लोक कहा गया है।[2] उत्तराध्ययनसूत्र में जीव और अजीव की सहस्थिति को लोक कहा है।[3] अन्य शब्दों में आकाश का जो भाग जीव और पुद्गल से संयुक्त है और धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय एवं काल से भरा हुआ है, वह सर्वकाल में लोक है।[4]

लोक का विश्लेषण करते हुए कहा गया है कि लोक ससीम है। लोकाकाश के असंख्यात प्रदेश है और यह लोक 14 रज्जू परिमाण परिमित है।[5] महान् वैज्ञानिक अलवर्ट आइन्स्टीन ने लोक का जो स्वरूप दिया है, वह जैन दृष्टि से मिलता जुलता है। उनके अनुसार लोक परिमित है। लोक के परिमित होने का कारण यह है कि द्रव्य अथवा शक्ति लोक के बाहर नहीं जा सकती। लोक के बाहर उस शक्ति का अभाव है, जो गति में सहायक होती है।[6]

लोक तीन विभागों में विभक्त हैं–अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक।[7]

1. अधोलोक

मध्यलोक के नीचे का कुछ अधिक सात रज्जु प्रमाण विस्तार वाला क्षेत्र

1. षड्द्रव्यात्मको लोक:। जैन सि० 1/8
2. भग० 13/4
3. उत्तरा० 36/2
4. पोग्गलजीवणिबद्धो धम्मधम्मत्थिकायकालड्ढो।
   वट्टदि आगासे जो लोगो सो सव्वकाले दु।। प्रव०गा० 128
5. जैन दर्शन: स्वरूप और विश्लेषण, पृ० 41
6. मुनि श्री हजारी मल स्मृति ग्रंथ, पृ० 333
7. तिविहे लोगे पण्णत्ते, तंजहा–उड्ढलोगे, अहोलोगे, तिरियलोगे। स्था०सू० 3/2/1

अधोलोक कहलाता है, इसे नरक भी कहा जाता है। नरक शब्द की निरुक्ति करते हुए आचार्य यास्क ने लिखा है, जहाँ सूर्य का प्रकाश नहीं है, जहाँ कोई भी रमणीय स्थान नहीं है, वह नरक है।[1] शास्त्रीय भाषा में असातावेदनीय कर्मोदय से प्राप्त शीत और उष्ण आदि की वेदना से जीवों को रूलाने के स्थान को नरक कहा जाता है।[2]

जैनागमों में नरक अथवा अधोलोक में क्रमशः नीचे-नीचे सात नरक है, जिनके सात उस-उस पृथ्वी में होने वाली प्रभा एवं अन्धकार की तरतमता के अनुसार है-रत्नप्रभा, शर्करप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धर्मप्रभा, तमप्रभा, महातमः प्रभा।[3] ये नरक क्रमशः एक-दूसरे के नीचे अवस्थित है। ये सातों नरक द्रव्य की दृष्टि से शाश्वत है, इनका कभी नाश नहीं होता।[4]

प्रथम रत्नप्रभा पृथ्वी के 13 प्रस्तर (पाथडे) हैं। पहले प्रस्तर की जघन्य आयु 10 हजार वर्ष की और उत्कृष्ट 60 हजार वर्ष की वायु है।

उपासकदशांगसूत्र का प्रथम और अष्टम् अध्याय आनन्द श्रावक एवं महाशतमक श्रावक का है। जब आनन्द श्रावक[5] एवं महाशतक[6] को अवधिज्ञान हुआ, तो वह अधोलोक में प्रथम नरक रत्नप्रभा में चौरासी हजार वर्ष की स्थिति युक्त लोलुपाच्युत नामक नरक तक जानने और देखने लगे। महाशतक प्रकरण में भी जब महाशतक की पत्नी रेवती उनके धार्मिक अनुष्ठान में विघ्न डालने के लिए कुचेष्टाएँ करने लगी, तो उसके उपद्रवों से क्रोधित होकर महाशतक ने अवधिज्ञान में उपयोग लगाया और कहा-तू सात दिन के अन्दर अलस रोग से पीड़ित होकर मर जायेगी और लोलुपाच्युत नरक में उत्पन्न होगी और वहाँ चौरासी हजार वर्ष की आयु प्राप्त करेगी।[7]

---

1. नरके न्यरकं नीचैर् गमनम्। नास्मिन् रमणं स्थानं अल्प अप्यस्तीति वा।।
निरु० पृ० 67
2. नारान् कायन्तीति नरकाणि। शीतोष्णासद्वेद्योदयापादितवेदनया नरान् कायन्ति शब्दायन्त इति नरकाणि नृणन्तीति वा। अथवा पापकृतः प्राणिनः आत्यन्तिकं दुःखं नृणन्ति नयन्तीति नरकाणि।
त०वा० 2/50/2-3
3. स्था०सु० 7/23, 24
4. जीवा०सू० 3/78
5. उपा०सू० 1/71
6. वही, 8/249
7. वही, 8/251

रत्नप्रभा पृथ्वी में लोलुपाच्युत प्रथम प्रस्तर का ही एक विभाग है। शेष छह नरकों में भी क्रमशः ग्यारह, नौ, सात, पांच और एक प्रस्तर है और आयु में प्रत्येक नरक की आयु प्रथम से अधिक है और सातवीं नरक की आयु तेंतीस सागरोपम है।[1]

इन नरकों में रहने वाले जीव नारकी कहलाते हैं। नारकियों का जीवन अत्यन्त दुखःमय होता है। उन्हें तीन प्रकार की वेदनाएँ होती है-परमाधर्मी देवों द्वारा, क्षेत्र वेदना व परस्पर वेदना।[2]

नीचे-नीचे की नरकों में पहले की अपेक्षा दूसरी और दूसरे की अपेक्षा तीसरी में वेदना, रोग, शरीर की ऊँचाई, आयु, लेश्या, दुःख और भय आदि की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है।[3]

2. मध्यलोक

ऊर्ध्वलोक के नीचे और अधोलोक के ऊपर 1800 योजन प्रमाण मध्यलोक है। इसमें मनुष्य और तिर्यंचों का निवास है। लोक के मध्य में होने के कारण इसे मध्यलोक कहा जाता है।

मध्यलोक में असंख्यात द्वीप समुद्र है।[4] वह क्रम से द्वीप के अनन्तर समुद्र और समुद्र के अनन्तर द्वीप इस प्रकार अवस्थित है। इतने विशाल क्षेत्र परिमाण में केवल अढ़ाई द्वीप में ही मनुष्यों का निवास माना गया है।[5] अढ़ाई द्वीप में जम्बूद्वीप, धातकी खण्ड और पुष्करार्धद्वीप आते हैं।

(क) जम्बूद्वीप

अढ़ाई द्वीप, के मध्य में जम्बूद्वीप है, जो वृत्ताकार है, जिसका विष्कम्मक एक लाख योजना है।[6] जम्बूद्वीप में सात मुख्य क्षेत्र है, जिनको वर्ष भी कहते हैं-भरतक्षेत्र, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत् और ऐरावत।[7]

---

1. प्रज्ञा०सू० 335
2. जै०त०प्र०, पृ० 59
3. दे०ज्ञाना०, 33-78
4. जीवा०सू०, 3/123
5. प्राङ् मानुषोत्तरान्मनुष्याः।। त०सू० 3/14
6. जम्बू०प्र०सू०, 1/3
7. स्था०सू० 7/50, दे०त०सू० 3/10

इन सात क्षेत्रों को अलग करने वाले पूर्व-पश्चिम लम्बे-हिमवान, महाहिमवान, निषध, नील, रूकमी-यह छह वर्षधर पर्वत है।[1]

उपासकदशांगसूत्र में श्रमणोपासक आनन्द[2] और महाशतक[3] को जो अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ था, उससे वह उत्तर दिशा में चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत तक देखने लगे थे। प्रस्तुत सूत्र में हिमवान् के लिए चुल्ल हिमवत पद का प्रयोग हुआ है। चुल्ल का अर्थ छोटा है। महाहिमवान् की अपेक्षा हिमवान् के साथ यह विशेषण दिया गया है।

लवण समुद्र

जम्बूद्वीप के चारों और वलयाकार जम्बूद्वीप को घेरे हुए दो लाख योजन के विस्तार वाला लवण समुद्र है।[4] यह किनारे पर तो बल के अग्रभाग जितना गहरा होता है, किन्तु आगे-आगे इसकी गहराई बढ़ती चली जाती है। 95000 योजन आगे जाने पर इसमें 1000 योजन की चौड़ाई में 1000 योजन की गहराई हो जाती है, फिर गहराई कम होने लग जाती है और क्रम से घटती-घटती धातकी खण्ड द्वीप के समीप यह बालाग्र जितनी गहरी रह जाती है।

उपासकदशांगसूत्र में आनन्द श्रावक[5] एवं महाशतक[6] श्रावक को जब शुभ अध्यवसाय, शुभ परिणाम एवं विशुद्ध लेश्या के कारण अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ, तो वह पूर्व और पश्चिम की तरफ लवण समुद्र के पाँच सौ योजन की दूरी तक जानने तथा देखने लगे थे।

(ख) धातकी खण्ड

लवण समुद्र के चारों ओर गोलाकार चार लाख योजन के विस्तार वाला धातकीखण्ड द्वीप है।[7] यह द्वीप लवण समुद्र को घेरे हुए है। इसके मध्य में पूर्व और पश्चिम द्वार से निकल इक्षुकार नाम के दो पर्वत हैं। इससे इस खण्ड के पूर्व-धातकी खण्ड और पश्चिम धातकी खण्ड ऐसे दो भाग हो जाते हैं। दोनों भागों में एक-एक

1. त०सू० 3/11
2. उवा०सू० 3/11
3. वही, 8/253
4. दे०जीवा०सू०, 3/123
5. उवा०सू० 1/174
6. वही, 8/253
7. जीवा०सू०, पृ० 343

मेरुपर्वत है। जम्बूद्वीप की अपेक्षा धातकी खण्ड में मेरुपर्वत, क्षेत्र और पर्वतों की संख्या दुगुनी है और नाम इन सबके एक समान है।

कालोदधि समुद्र

धातकी खण्ड द्वीप को चारों ओर से घेरे कंकण के आकार का 8 लाख योजन का चौड़ा और हजार योजन गहरा कालोदधि समुद्र है। इसके पानी का स्वाद साधारण नमक जैसा माना गया है।[1]

(ग) पुष्कर द्वीप

कालोदधि समुद्र को चारों ओर से घेरे चूड़ी के आकार का 16 लाख योजन का चौड़ा पुष्कर द्वीप है। इसके मध्य में 1721 योजन ऊँचा वलयाकार एक मानुषोत्तर पर्वत है। इस पर्वत के कारण आधे भाग में ही मनुष्य की आबदी है, बाहर नहीं। इसी कारण यह पर्वत मानुषोतर कहा जाता है।[2]

धातकी खण्ड की भाँति इस पुष्कर द्वीप के मध्य में भी दो इक्षुकार पर्वत हैं जिसके कारण इसके दो विभाग हो जाते हैं-पूर्व पुष्करार्ध द्वीप और पश्चिमी पुष्करार्ध द्वीप। धातकी खण्ड के समान इसमें भी दो मेरु पर्वत हैं। यह मेरु, क्षेत्र पर्वत आदि में धातकी खण्ड के समान है।

3. ऊर्ध्वलोक

मध्यलोक से ऊपर के भाग को ऊर्ध्वलोक कहा गया है। ऊर्ध्वलोक मध्यलोक से सात सौ नब्बे योजन की ऊँचाई से आरम्भ होता है। ऊर्ध्वलोक में देवों का निवास है, इसलिए उसे देवलोक, ब्रह्मलोक, यक्षलोक और स्वर्गलोक भी कहते है।[3]

देवों के चार भेद हैं-भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक।[4]

(क) भवनपति देव

प्रथम नरक के 13 प्रस्तर एवं 12 अन्तरे हैं। यह अन्तरे असंख्यात योजन के लम्बे-चौड़े और 11483 योजन के ऊँचे हैं। उनके दो विभाग हैं-उत्तर और दक्षिण। बारह अन्तरों में से एक सब से ऊपर का और दूसरा सबसे नीचे का खाली है। बीच के दश अन्तरों में अलग-अलग जाति के भवनपति देव रहते हैं।[5] ये भवनों में निवास करते हैं, इसलिए इन्हें भवनपति देव कहा जाता है। यह दश प्रकार के हैं-असुरकुमार,

1. जै०त०प्र०, पृ० 78
2. जै०त०प्र०, पृ० 78
3. उत्तरा०सू० 19/8, 28/29, 5/24, 14/41
4. वही, 36/203 तथा त०सू० 4/1
5. जै०त०प०, पृ० 59

नागकुमार, सुवर्णकुमार, विद्युतकुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार, दिशाकुमार, वायुकुमार एवं स्थनितकुमार।[1]

(ख) वाणव्यन्तर देव:

(ख) विभिन्न अन्तरों में निवास करने एवं वन-भ्रमण के शौकीन होने के कारण देवों को वाणव्यन्तर कहा जाता है। यह प्रथम नरक के एक हजार योजन मोटे रत्नमय काण्ड के ऊपर से एक सौ योजन ऊपर और एक सौ योजन नीचे को छोड़कर बीच के आठ सौ योजन में वाणव्यन्तर देवों के नगरावास है।[2] यह संख्या में आठ हैं–पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, महोरग और गन्धर्व।[3] प्रज्ञापनासूत्र में भी यही आठ भेद गिनाए हैं, केवल क्रम में अन्तर है।

उपासकदशांगसूत्र में जब मिथ्यादृष्टि देव श्रावक कामदेव[4] की परीक्षा लेने आता है तब वह पिशाच का विकराल रूप बनाकर उन्हें डराता है। कामदेव श्रावक के प्रसंग में पिशाच के भंयकर रूप का वर्णन किया गया है। उसके प्रत्येक अंगों की उपमाएँ दी गई है, जो बड़ी विचित्र हैं।

(ग) ज्योतिष देव

जो देव प्रकाशमान विमानों में निवास करते हैं, वे ज्योतिषदेव कहलाते हैं। यह देव रत्नप्रभा पृथ्वी से सात सौ नब्बे योजन की ऊँचाई पर एक सो दश योजन विस्तृत एवं तिरछे असंख्यात योजन क्षेत्र में रहते हैं।[5] यह पांच प्रकार के होते हैं–चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा।[6] यह पांच चर और पांच ही अचर हैं। अढ़ाई द्वीप में ये चलते हैं और बाहर अचर कहते हैं।

(घ) वैमानिक देव

ज्योतिष देवों से ऊपर विमानों में निवास करने वाले देव वैमानिक देव कहलाते हैं। यद्यपि ज्योतिष देव भी विमानों में रहते हैं, परन्तु इनका यह नाम पारिभाषिक मात्र है। वैमानिक देव दो प्रकार के होते हैं–कल्पयोग और कल्पातीत।।[7]

1. प्रज्ञा० 1/140
2. प्रज्ञा०, पृ० 350
3. उत्तरा० 36/207
4. उवा०सू० 2/94
5. प्रज्ञा० 2/195
6. स्था० 4/1/42, त०सू० 4/13
7. प्रज्ञा० 1/143

कल्पोपग देव

कल्प सहित अर्थात् इन्द्रों की आज्ञा में रहने वाले देवों को कल्पोप देव कहते हैं। कल्पोपग देव बारह प्रकार के होते हैं–सौधर्म, ईशान, माहेन्द्र, ब्रह्म, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरणक और अच्युत।[1] इन की भूमि को स्वर्ग से जाना जाता है और इन्द्रादिक को स्वर्गिक देव। कहीं-कहीं इनकी सख्या सोलह बतलायी गयी है तथा इन्द्र भी तेंतीस होते हैं।

कल्पातीत देव

बारहवें देवलोक से ऊपर इन्द्र, सामानिक देवों की आज्ञा नहीं चलती, सभी देव एक सरीखी ऋद्धि के धारक होते है, इस कारण यह सभी अहमिन्द्र कहलाते हैं। यह देव दो प्रकार के होते हैं–ग्रैवेयक वासी और अनुतर विमानवासी देव।[2] ग्रैवेयक देव नौ प्रकार हैं–अधस्तन-अधस्तन, अधस्तन-मध्यम, अधस्तन-उपरितन, मध्यम-अधस्तन, मध्यम-मध्यम, मध्यम-उपरितन, उपरितन-अधस्तन, उपरितन-मध्यम और उपरितन-उपरितन यह नौ ग्रैवयेक देव हैं।[3]

अनुतर विमानवासी देव पांच प्रकार के कहे गए हैं–विजय, वैजयन्त, यन्त, अपराहित सर्वार्थसिद्ध।[4]

उपासकदशांगसूत्र में दस श्रावकों के वर्णन से ज्ञात होता है कि दस श्रावक ही प्रथम देवलोक सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुए और वहाँ से महाविदेह क्षेत्र में जन्म ले कर वे सिद्ध, बुद्ध एवं मुक्त हो जाएंगे।[5]

द्वितीय, चतुर्थ और पंचम, तृतीय, षष्ठ अध्ययन में देव श्रावकों की धर्मनिष्ठा की परीक्षा लेने के लिए उन्हें नाना उपसर्ग देता है, वह देव भी प्रथम सुधर्म देवलोक का निवासी थी, इस बात की पुष्टि इस बात से होती है, जब वह देव कामदेव आदि श्रावकों को परीक्षा में सफल देखता है तो कहता है "हे देवानुप्रिय! देवराज शक्र ने चौरासी हजार सामानिक तथा अन्य देवी देवताओं के मध्य भरी सभा में यह घोषणा की थी कि कामदेव आदि श्रावकों को कोई देव, असुर या गन्धर्व धर्म से विचलित

1. उत्तरा० 36/210-11, प्रज्ञा०सू० 1/144
2. प्रज्ञा०सू० 1/145
3. वही, 1/146
4. स्था०सू० 5/3/197
5. उवा०सू० 1/89, 2/122, 3/149, 4/159, 5/164, 6/179, 7/230, 8/268, 9/272, 10/274

करने में समर्थ नहीं है। हमें उनकी बात पर विश्वास नहीं हुआ और मैं तत्काल चला आया परन्तु आपकी धर्म भावना देख मैं आपसे क्षमायाचना करता हूँ।"

इसमें वर्णन है कि 84000 सामानिक देवों वाले शकेन्द्र ने प्रशंसा की। 84000 सामानिक देव सुधर्म देवलोक के इन्द्र होते हैं। अत: सिद्ध होता है कि परीक्षार्थ उपस्थित देव प्रथम देवलोक से आया होगा।

इस प्रकार जैनदर्शन में त्रिलोक का विस्तृत वर्णन मिलता है। अधिक के लिए त्रिलोकप्रज्ञप्ति, त्रिलोकसार, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति तथा सूर्यप्रज्ञप्ति जैसे गम्भीर ग्रंथों का मनन चिन्तन करना अपेक्षित है।

पंचम अध्याय

उपासकदशाङ्गसूत्र में प्रतिबिम्बित समाज एवं संस्कृति